मीमांसा दर्शन

वेद तथा वैदिक धर्म के ऊपर जब बहुत आक्षेप हुआ उस समय मीमांसा दर्शन की रचना हुई। मीमांसा में मुख्य विषय धर्म है। इस दर्शन के अनुसार ''यतोऽभ्युदयनि:श्रेयस:सिद्धि: स धर्म:'' अर्थात् जिससे इस लोक तथा परलोक में कल्याण की प्राप्ति हो उसी को धर्म कहते हैं। यद्यपि मीमांसा में परमाणु को छोड़कर अन्य किसी भी दार्शनिक तत्त्व का विचार नहीं है। इन परमाणुओं का भी विचार प्रमेय जानने के लिए नहीं किया गया है, किन्तु मीमांसा के मुख्य विषय 'धर्म' को जानने के लिए तथा वेदार्थ विचार के लिए है। वेद तो ज्ञान स्वरूप है, अत: वेद के अर्थ का विचार करने वाला मीमांसा शास्त्र भी दर्शन शास्त्र कहा जा सकता है। चूंकि धर्म के सम्बन्ध में विचार कायिक, वाचिक तथा मानसिक सभी प्रकार से आवश्यक है। इन्हीं के द्वारा अन्त:करण की शुद्धि हो सकती है अर्थात् मीमांसा शास्त्र आध्यात्मिक चिन्तन के लिए भूमिका तैयार करता है। इसलिए भी इसे दर्शन कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। मीमांसा अर्थात् धर्म या वेद के अर्थ का विचार। यह पूर्व मीमांसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें ज्ञान का विचार करने के पूर्व कर्मकाण्ड तथा धर्म का विचार होता है। इसके बाद ही वेदान्त में कहे गए आत्मा के सम्बन्ध में साधक समझ सकता है। अत: मीमांसा को पूर्व मीमांसा और वेदान्त को उत्तर मीमांसा कहा गया है। मीमांसा दर्शन का चरम ध्येय स्वर्ग प्राप्ति है। यह लौकिक दृष्टिकोण की चरम स्थिति है क्योंकि साधारण लोग स्वर्ग को ही परम पद समझते हैं। मीमांसा के 12 विषय है। ये है, धर्म-जिज्ञासा, कर्म-भेद, श्रेयत्व, प्रयोज्य-प्रयोजक भाव, कर्मों में कर्म, अधिकार सामान्य, विशेष, अतिदर्श, ओह, बाध, तंत्र तथा आवाब। इन सब का यज्ञ तथा वेद के मंत्रों से सम्बन्ध है।

मीमांसा दर्शन में जगत् के कर्ता तथा वेद के रचियता के रूप में

ईश्वर को नहीं स्वीकार किया है साथ ही इन्होंने प्रलय और सृष्टि को भी नहीं माना है। प्रलय और सृष्टि के कर्ता के रूप में एक सर्वज्ञ चेतन ईश्वर को नहीं माना है। उनका कहना है कि सर्वज्ञ तो कोई हो ही नहीं सकता। मीमांसा के मत में ईश्वर और परमात्मा के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इन्होंने शरीर, इन्द्रिय आदि से भिन्न आत्मा अर्थात् जीवात्मा की सत्ता को माना है। यह एक द्रव्य है। वेद में कहा गया है कि यज्ञ के **''अनन्तः यजमानः स्वर्गलोकंप्रयाति''** अर्थात् यजमान स्वर्गलोक को जाता है। यजमान का शरीर तो मरने पर यहीं दग्ध हो जाता है अतः शरीर तो स्वर्ग को नहीं जाता फिर जो जाता है वही है 'जीवात्मा'। इसी प्रकार वह जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त होता है। मुक्त होने वाला शरीर इन्द्रिय आदि से भिन्न एक कोई है जो नित्य है जिसका नाश नहीं होता जो इस लोक से परलोक को जाता है। आत्मा में ज्ञान का उदय होता है, किन्तु स्वप्नावस्था में विषय के न होने पर आत्मा में ज्ञान नहीं रहता। इस प्रकार यह जड़ और बाध स्वरूप भी है। यह ज्ञान से भिन्न होकर भी हम ज्ञान के द्वारा भी बोधगम्य होता है। जीवात्मा भोक्ता है, शरीर भोगायतन है, इन्द्रिय भोगसाधन है और सुख-दु:ख तथा पृथ्वी आदि भोग्य है। जीव शरीर, इन्द्रिय, भोग्य तथा भोक्ता इन पाँचों के रहते ही ज्ञान होता है और वस्तुतः समस्त जगत् इन्हीं पाँचों में समवेत है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार तीन प्रकार से प्रपंच अर्थात् संसार मनुष्य को बन्धन में डालता है। भोगायतन शरीर, भोगसाधन इन्द्रियां तथा शब्द, स्पर्श, रूप आदि भोग्य विषय इन तीनों के द्वारा मनुष्य सुख तथा दु:ख के विषय का साक्षात् अनुभव करता हुआ अनादिकाल से बन्धन में पड़ा रहता है। इन्हीं तीनों का आत्यन्तिक नाश होने से ही मुक्ति मिलती है। इसे ही मोक्ष कहा गया है। मोक्षावस्था में जीव में न सुख है न आनन्द है और न ज्ञान ही है, अर्थात् 'तस्मात् नि:सम्बन्धो निरानन्दश्च मोक्ष:'। मीमांसा दर्शन का मुख्य लक्ष्य या मुख्य विषय धर्म

है। जैमिनी ने धर्म के लक्षण के सम्बन्ध में लिखा है 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'। धर्म को जानने के लिए एकमात्र प्रमाण 'वेद' हैं। जिस ज्ञान में अज्ञात वस्तु का अनुभव हो अन्य ज्ञान से बाधित न हो एवं दोषरहित हो वही प्रमाण है। प्रमाण के भेद के सम्बन्ध में मीमांसको में अलग-अलग मत है। एक मत के अनुसार प्रमाण 6 बताए गए है। ये है, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि (अभाव)।

प्रत्यक्ष प्रमाण:- साक्षात् उत्पन्न ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय और अर्थ के साक्षात् सम्बन्ध से प्रत्यक्ष का ज्ञान होता है। प्रत्येक प्रत्यक्ष ज्ञान में मेय (ज्ञान के विषयों) माता तथा प्रमा ये तीनों रहतें है। इन्द्रिय और अर्थ के बीच दो प्रकार के सम्बन्ध होते है। ज्ञान के विषयों यानि मेय के साथ इन्द्रियों के सहयोग से विषय में संयुक्त के साथ समवाय तथा समवेत समवाय से द्रव्य, जाति तथा गुण के साथ इन्द्रिय संयोग से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

सन्निकर्ष दो प्रकार के होते है। तत्समवाय तथा तत् कारण समवाय किन्तु प्रत्यक्ष की इन्द्रिय का, द्रव्य के साथ इन्द्रिय का तथा रूप आदि गुणों के साथ इन्द्रिय का। सुख-दुःख आदि आन्तरिक वस्तुओं के प्रत्यक्ष में मन को अर्थ तथा आत्मा के साथ दो ही प्रकार के सन्निकर्ष होते है।

जिस वस्तु के साथ इन्द्रियों का सन्निकर्ष न हो परोक्ष कहलाती है। परोक्ष वस्तु का ज्ञान जिस प्रक्रिया के द्वारा हो उसे अनुमान कहते है। जैसे:- अपने या दूसरे के रसोईघर में बार-बार धुएँ के साथ आग को देखकर देखने वाले के मन में जहाँ धुआँ है वहाँ आग है, इस प्रकार का एक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इसके बाद वह पुरुष जब कभी जंगल में जाता है तो उसे पर्वत से निकलता हुआ धुआँ दीख पड़ता है, तब उसे यह स्मरण होता हैं कि जहाँ धुआँ हो वहाँ आग होती है और वह निर्णय करता है कि वहां आग है, यही अनुमान है।

किसी संज्ञा शब्द का उससे बोध कराने वाले पदार्थ के साथ के सम्बन्ध के ज्ञान को उपमान कहते हैं। जैसे:- गवय नाम के पदार्थ को न जानते हुए किसी जंगली मनुष्य के द्वारा, गाय के समान गवय होता है, यह सुनकर वन मे जाने पर जंगली पुरुष के कहे गए वाक्यों का स्मरण कर गाय के समान एक जन्तु को जंगल में देखकर यही गवय नाम का जन्तु है, ऐसा ज्ञान किसी मनुष्य की आत्मा में उत्पन्न होता है। गाय और गवय इन दोनों में जो सादृश्य है उसी के आधार पर यह उपमान निर्भर है।

ज्ञात शब्द से पदार्थ का स्मरणात्मक ज्ञान होने पर जो वाक्यार्थ का ज्ञान होता है, वही शब्दार्थ है। यह दो प्रकार का है, पौरुषेय और अपौरुषेय। आप्तों का वाक्य पौरुषेय है। वेद वाक्य अपौरुषेय है।

दृष्ट या श्रुत विषय की उत्पत्ति जिस अर्थ के विना न हो उस अर्थ के ज्ञान को अर्थापत्ति कहते हैं। जैसे:- मोहन दिन में कुछ नहीं खाता, फिर भी खूब मोटा है। इस वाक्य में न खाना तथापि मोटा होना, इन दोनों कथनों में समन्वय की उपपत्ति नहीं होती। अत: उपपत्ति के लिए ''रात्रि में भोजन करता है'' यह कल्पना की जाती है। ''रात्रि में खाता है'' यह कल्पना स्वयं की जाती है। इसी को अर्थापत्ति कहते हैं।

प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के द्वारा जब किसी वस्तु का ज्ञान नहीं होता तब वह वस्तु नहीं है। इस प्रकार उस वस्तु के अभाव का ज्ञान हमें होता है। इस अभाव का ज्ञान इन्द्रिय सन्निकर्ष आदि के द्वारा तो हो नहीं सकता, क्योंकि इन्द्रिय सन्निकर्ष 'भाव' पदार्थो के साथ होता है। अतएव अनुपलब्धि या अभाव नाम के एक ऐसे स्वतन्त्र प्रमाण को मीमांसक मानते है जिसके द्वारा किसी वस्तु के अभाव का ज्ञान हो।

मीमांसक वेद को नित्य, अपौरुषेय तथा स्वत: प्रमाण मानते है। इनके मत में वस्तुत: एकमात्र प्रमाण वेद है। जिन्हें हम शब्द प्रमाण कहते है। वस्तुत: प्रत्यक्ष आदि प्रमाण तो मीमांसा का अपना विषय भी

नहीं है। अतः मीमांसकों को प्रमाण का स्वतः प्रामाण्य मानना स्वाभाविक है।

मीमांसा दर्शन में अज्ञातार्थ के साधक को प्रमाण कहा गया है। मीमांसा दर्शन 6 प्रमाण मानता है, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अभाव। प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद से ज्ञान दो प्रकार का होता है। यदि ज्ञान और उसका विषय समान देशकाल में हो तो उसे प्रत्यक्ष तथा दोंनों भिन्न देशकाल में हो तो उसे परोक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान आदि पाँच प्रमाण परोक्ष माने गए हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण में विषय का निश्चय स्वतः हो जाता है। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण में विषय का निश्चय करने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती जैसे - हमारे सामने कोई वस्तु है, हमें इस वस्तु का प्रत्यक्ष हो रहा है। इस चाक्षुष प्रत्यक्ष के निश्चय में चक्षु प्रमाण ही समर्थ है। किसी अन्य की आवश्यकता नहीं परन्तु अनुमान आदि का निश्चय प्रत्यक्ष के विना नही हो सकता। हम पर्वत में धूम का प्रत्यक्ष करके ही अग्नि का अनुमान करते हैं। सादृश्य का प्रत्यक्ष होने पर ही उपमान सम्भव है। शब्द ज्ञान में भी हम शब्द को कानों से सुनकर शब्द का ज्ञान प्राप्त कर सकतें है। इसी प्रकार अर्थापत्ति और अनुपलब्धि में भी प्रत्यक्ष की आवश्यकता है। प्रत्यक्ष ज्ञात है, इस ज्ञात से अज्ञात का ज्ञान प्राप्त करना ही अनुमान कहलाता है। हम पर्वत में अग्नि का अनुमान करतें है क्योंकि वहाँ धूम का प्रत्यक्ष हो रहा है, अतः यह ज्ञात से अज्ञात का ज्ञान है। धूम्र तो प्रत्यक्ष है परन्तु अग्नि का ज्ञान परोक्ष है।

उपमा या सादृश्य के आधार पर प्राप्त ज्ञान ही उपमान है जैसे कोई व्यक्ति गवय या नील गाय को नहीं जानता। कोई आरण्यक पुरुष उसे बतलाता है कि गौ सदृश पशु को गवय कहा जाता है। पुनः जब वह पुरुष जंगल में जाता है और वहां गौ सदृश किसी पशु को देखता है तब उसे अतिदेशवाक्य (आरण्यक) के द्वारा बताया गया गौ सदृश पशु को गवय कहते हैं इस अर्थ का स्मरण हो जाता है और तब उसे प्रमा

होती है, गौ के समान दिखने वाला पशु गवय है। यही ज्ञान उपमान है। मीमांसा दर्शन में शब्द प्रमाण पर सबसे अधिक बल दिया गया है। आप्त पुरुष के द्वारा उच्चरित वाक्य ही शब्द प्रमाण कहा जाता है, वाक्य दो प्रकार का है, पौरुषेय और अपौरुषेय। आप्त व्यक्ति का कथित या लिखित वचन पौरुषेय कहलाता है। अपौरुषेय वाक्य किसी पुरुष द्वारा कथित या लिखित नहीं होता। शब्द प्रमाण के द्वारा ही वेद की नित्यता तथा अपौरुषेयता प्रमाणित होती है। जिसकी सहायता से विषय की उत्पत्ति होती है। उसी को अर्थापत्ति कहते हैं जैसे- देवदत्त नामक व्यक्ति दिन में भोजन नहीं करता फिर भी मोटा है, यहां पर स्पष्टत: दो विरोधी विषय हैं। उपवास करना तथा शरीर का पुष्ट होना। जो व्यक्ति उपवास करता है उसका शरीर कमजोर होना चाहिए, पुष्ट नहीं। इन दोनों विषयों में विरोध का परिहार तभी हो सकता है जब हम रात में भोजन की कल्पना करें। अनुपलब्धि प्रमाण के द्वारा अभाव का ज्ञान होता है। इसके लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं। अमुक स्थान पर घट नहीं है अत: उस स्थान पर हमें घट के अभाव का ज्ञान हो रहा है। घटाभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष से सम्भव नहीं क्योंकि घट से इन्द्रिय का सम्बन्ध हो सकता है, घटाभाव से नहीं। घटाभाव का ज्ञान अनुमान से भी नहीं हो सकता क्योंकि अनुमान के लिए भी व्याप्ति ज्ञान की आवश्यकता है। यह सादृश्य ज्ञान भी नहीं जो उपमान से प्राप्त हो तथा आप्त वाक्य भी नहीं जो शब्द प्रमाण से प्राप्त हो, अत: यह स्वतंत्र प्रमाण है।

मीमांसा दर्शन का मुख्य विषय कर्म सिद्धान्त है। कर्म का अभिप्राय वैदिक कर्मकाण्ड से है। कर्मकाण्ड ही मीमांसा का सार है। अन्य दर्शनों में ईश्वर का जो स्थान है वही मीमांसा में कर्म का है। मीमांसक ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं मानते क्योंकि अपना फल स्वयं देते हैं। मीमांसा दर्शन के अनुसार वेद प्रतिपादित कर्म तीन प्रकार के हैं:-

1. नित्य-नैमित्तिक कर्म 2. प्रतिषिद्ध कर्म 3. काम्य कर्म

संध्यावन्दन आदि नित्य कर्म हैं। किसी अवसर विशेष पर किए जाने वाले कर्म श्राद्ध आदि नैमित्तिक कर्म हैं। वेद के द्वारा वर्जित कर्म प्रतिषिद्ध कर्म कहलाते हैं तथा किसी कामना विशेष से किया गया कर्म जैसे- 'स्वर्गकामो यजेत' अर्थात् स्वर्ग की कामना करने वाले को यज्ञ का सम्पादन करना आदि काम्य कर्म है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार कर्मकाण्ड के द्वारा ही मनुष्य अपना अभीष्ट फल प्राप्त कर सकता है तथा अपना लौकिक और पारलौकिक कल्याण कर सकता है। इसमें देवता सम्प्रदानकारक सूचक पदमात्र है। इससे बढ़कर उनकी स्थिति नहीं। देवता मंत्रात्मक होते है और देवताओं की पृथक् सत्ता उन मन्त्रों को छोड़कर अलग नहीं होती जिसके द्वारा उनके लिए होम का विधान होता है। मीमांसा में देवता का स्थान गौण है। देवता तो केवल प्रतीक मात्र हैं जिनके लिए हवि दी जाती है। उनके नाम पर हवन किया जाता है, यही देवता का महत्त्व है। अत: यज्ञ के द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट करना नहीं वरन् अपनी आत्मा को शुद्ध करना ही परम लक्ष्य है। सामान्यत: किसी कामना की सिद्धि के लिए यज्ञ का विधान है परन्तु निष्काम कर्मों से आत्मज्ञान प्राप्त होता है और यह मोक्ष का साधन है। अत: मीमांसा दर्शन में स्वर्ग साधन तथा 'मोक्ष' साधन दोनों बतलाए गए हैं। मीमांसा दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में मतभेद है। प्राय: मीमांसा दर्शन अनीश्वरवादी समझा जाता है। ईश्वर के सम्बन्ध में यह युक्ति दी जाती है कि ईश्वर कर्मो का अधिष्ठाता है। हमारे शुभाशुभ कर्मों के पुण्यरूप फल का निर्णायक ईश्वर ही है। मीमांसा के अनुसार कर्म अपना फल स्वयं देते हैं। याज्ञिक कर्मो से 'अपूर्व' उत्पन्न होता है तथा अपूर्व से स्वर्गादि फल की प्राप्ति होती है। इसमें ईश्वर की आवश्यकता नहीं। ईश्वर सत्ता के सम्बन्ध में दूसरी युक्ति दी जाती है कि सृष्टि के लिए कर्ता की आवश्यकता है। सृष्टिकर्ता के विना सृष्टि सम्भव नहीं। न्याय दर्शन में इसी को कार्य

कारण तथा अपूर्व से स्वर्गादि फल उत्पन्न होता है। याज्ञिक कर्मों से अपूर्व उत्पन्न होता है तथा अपूर्व से स्वर्गादि फल की प्राप्ति होती है। इसमें ईश्वर की आवश्यकता नहीं। सृष्टिकर्ता के विना सृष्टि सम्भव नहीं। न्याय दर्शन में इसी को कार्य-कारण तथा अनुमान कहा है। प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कर्त्ता अवश्य है। जगत् भी कोई कार्य है। इसका भी कर्त्ता ईश्वर अवश्य होना चाहिए लेकिन मीमांसक जगत् को नित्य मानते हैं। अतः इनके लिए सृष्टिकर्ता की कोई आवश्यकता नही अर्थात् सृष्टिकर्ता के रूप में ईश्वर की सत्ता मान्य नहीं।

मीमांसा दर्शन में स्वर्ग प्राप्ति को ही निःश्रेयस् माना है। उनके अनुसार वैदिक कर्मों का फल स्वर्ग की प्राप्ति माना गया है जैसे-'स्वर्ग कामो यजेत' अर्थात् स्वर्ग की कामना करने वाला यज्ञ का सम्पादन करे तथा स्पष्ट है कि यज्ञ कार्य का उद्देश्य स्वर्ग है, परन्तु स्वर्ग फल की अनित्यता के कारण बाद के मीमांसा ने 'मोक्ष' को चरम साध्य माना है। उनके अनुसार जगत् के साथ आत्मा के सम्बन्ध विच्छेद को 'मोक्ष' कहते हैं। निष्काम कर्म से पूर्व कर्मों के संचित संस्कार नष्ट हो जाते हैं तथा पूर्व जन्म का नाश हो जाता है, यही मोक्ष है। आत्मा तथा जगत् के तीन कारण हैं- भोगायतन शरीर, भोगसाधन इन्द्रिय तथा भोग्य विषय पदार्थ। ये तीनों ही आत्मा के बन्धन के कारण हैं। इनके नाश से ही बन्धन का नाश होता है तथा पूर्नजन्म का भान होता है। जब आत्मा शरीर इन्द्रियों के द्वारा जगत् के सम्पर्क में आता है तभी आत्मा को सुख-दुःख का अनुभव होता है और जब इनमें सम्बन्ध विच्छेद है तो सुख-दुःख का अनुभव भी समाप्त हो जाता है, यही मोक्ष है।